ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-5* August- 2021
Anthology : The Research

# विषम समाज व्यवस्था के विरुद्ध उठती आवाज़: नंगा सत्य

# Rising up Against the Heterogeneous Social System Voice: Naked Truth

Paper Submission: 10/08/2021, Date of Acceptance: 23/08/2021, Date of Publication: 24/08//2021

**अजय कुमार सिंह**
स्टेट ऐडेड कॉलेज टीचर,
हिंदी विभाग
वर्धमान विश्वविद्यालय,
पूर्व वर्धमान, पश्चिम बंगाल,
भारत

## सारांश

सुशीला टाकभौरे ने अपने नाटक 'नंगा सत्य' के माध्यम से दलितों को एकजुटता के साथ-साथ संगठित होकर समाज की विषम परिस्थितियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने का मंत्र दिया है। दलित अगर शिक्षित होकर एकजुट नहीं होंगे तो उनका शोषण परम्परित रूप से होता ही रहेगा। सुशीला जी का नाटक सामाजिकों को एक स्पष्ट संदेश है कि सदियों से जिन सामंती ब्राह्मणवादी तथा सवर्ण विचारधारा ने तथाकथित निम्नजातियों पर जितने घोर शोषण किया है उसे शीघ्रतापूर्वक बंद करना होगा। दलित समुदाय को भी समाज में स्वाभिमानपूर्ण ढ़ंग से जीने का उतना ही हक है जितना कि बाकी उच्च जातियों का रहा है। समाज में प्राचीन समय से व्याप्त छुआछूत, रूढ़िवादी मान्यताएँ, अंधविश्वास आदि के द्वारा दलितों को ही नहीं उनकी स्त्रियों को भी सबसे अधिक प्रताड़ना सहनी पड़ी है। दोहरे-तिहरे रूप में शोषित दलित स्त्री का 'स्व' भी एक समय के लिए उसका साथ छोड़ देता है। पुरुष सत्तात्मक समाज में वह कई प्रकार से शोषित, अपमानित हुई है। गाँव के जमींदार, ऊँची जाति वालों को जब भी दलितों को डराना या अपमानित करना रहा है तभी वे उनके घर की बहू-बेटियों के साथ कुकर्म अथवा बिना वस्त्र गाँव-गाँव घुमाने का काम करते रहे हैं। सुशीला टाकभौरे का नाटक समाज में स्त्रियों को स्वतंत्रता, समानता के साथ सम्मान लाने की बात करती है। यह तभी संभव है जब तथाकथित निम्नजाति को विकसित होने का अवसर देते हुए सवर्णों की तथाकथित उच्चता को यथार्थता के धरातल पर लाकर वर्णभेद की विषमता को कम किया जाए।

Sushila Takbhare, through her play 'Nanga Satya', has given a mantra to the Dalits to unite as well as to unite and raise their voice against the adverse conditions of the society. If Dalits are not educated and united, then their exploitation will continue in the traditional way. Sushila ji's play is a clear message to the society that the brutal exploitation of the so called low castes by the feudal brahminical and savarna ideology over the centuries has to be stopped immediately.

The Dalit community also has the same right to live with dignity in the society as the rest of the upper castes have. Due to the untouchability, orthodox beliefs, superstitions etc. prevalent in the society since ancient times, not only the Dalits but their women have also suffered the most. In the double-triple form, the 'self' of the exploited Dalit woman also leaves her side for a time. She has been exploited, humiliated in many ways in a male-dominated society. Whenever the village zamindar, the upper caste people intimidated or humiliated the dalits Only then they have been doing misdemeanor work with the daughters-in-law of their house or traveling from village to village without clothes. Sushila Takbhare's play talks about bringing freedom, equality and respect to women in the society. This is possible only when the inequalities of caste discrimination are reduced by bringing the so-called highness of the upper castes to the ground of reality, while giving the so-called low caste the opportunity to develop.

**मुख्य शब्द:** वर्ण-वैषम्य, शोषण, सामाजिक-समानता, स्वनिर्भर, अस्मिता, चेतना।
varna-disparity, exploitation, social-equality, self-reliance, identity, consciousness

**प्रस्तावना**

दलित समुदाय की सबसे बड़ी विडम्बना समाज में समानता की भावना को स्थापित करना रहा है। सदियों से ब्राह्मणवादी सामंती विचारधारा के पंजे में जकड़ा हुआ समाज का चातुर्वर्ण्य कहे जाने वाले शूद्र जाति की जो कारुणिक, दयनीय स्थिति का पता चलता है वह सचमुच पीड़ादायक है। संवेदना के धरातल पर उनकी कारुणिक दशा किसी भी मानवीकी को सहजता से प्रभावित करती है। लंबे समय से भोग रहे शोषण की पराकाष्ठा हो चुकी स्थिति के बारे में मूलतः यह साहित्य ही वह माध्यम बनकर उभरा है जिसके द्वारा समाज के इन दबे-कुचले मूक आवाज़ बन चुकी जाति को अपनी पीड़ा का कोलाहल करने का साधन मिल पाता है। दलित साहित्य आंदोलन इसी की परिणति है जिसके द्वारा वर्तमान समय में दलित लेखक ही नहीं बल्कि दलित लेखिकाओं की एक लंबी परिपाटी बनकर तैयार हो गई है। दलित साहित्य में अभी तक जिन लेखिकाओं की स्वानुभूति को विभिन्न प्रकार से किए गए षडयंत्रों के कारण स्थान नहीं मिल पाई थी उन्हें आज वही दलिताएँ अपनी आवाज़ बुलंद करते हुए साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से अपने जीवन की शोषण गाथा को यथार्थता के साथ प्रस्तुत करने में तनिक भी झिझक नहीं कर रही है। दलित महिला आलोचक विमल थोरात दलित साहित्य के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहती हैं कि "दलित साहित्य उस विद्रोह का उन्मेष है जो किसी विशिष्ट जाति या व्यक्ति के विरुद्ध नहीं, बल्कि स्व की खोज में निकले हुए एक पूरे समाज का पूर्व परम्पराओं में विद्रोह है एवं अपने अस्तित्व की स्थापना का प्रचार है।" [1]

दलित साहित्य आंदोलन के बरक्स जिन-जिन विधाओं में दलित लेखिकाओं ने अपनी लेखनी के द्वारा इसे समृद्ध करने का प्रयास किया है उसमें नाटक एक अन्यतम विधा है। ऐसे तो दलित नाटकों की संख्या अभी तक साहित्य में नहीं आ पाई है। लेकिन दलित लेखिका सुशीला टाकभौरे का 'नंगा सत्य' नाटक स्वयं में एक अलग पहचान बनाने में सफल हुआ है। नाटक का आरम्भ सूत्रधार कमल और कृपाशंकर के बीच समाज में नंगा सत्य लाने पर विचार होने से होता है। मूलतः रामपुर गाँव के दलित-पिछड़ों के सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक शोषण को दिखलाने का प्रयास इसमें हुआ है। नाटककार ने क्रमशः फुले-अम्बेडकर की विचारधाराओं से ही दलित शोषण से मुक्ति का मार्ग बतलाने का प्रयास किया है। मराठी समीक्षक डॉ. ईश्वर नंदपुरे ने नाटक के उद्देश्य के बारे में बतलाते हुए लिखा है कि "इस नाटक का उद्देश्य समाज में समता, सम्मान और भाईचारा स्थापित करना है। इसके लिए शिक्षा, संघर्ष और संगठन को आवश्यक बताया है। दलित नाटक का आधार वेदना, विद्रोह और नकार है। स्वतंत्रता प्राप्ति के साठ साल होने के बाद भी, हर गाँव, हर शहर में आज भी नंगा सत्य दिखाई दे रहा है। अन्धविश्वास, अशिक्षा, दलित-उत्पीड़न, नारी-उत्पीड़न, अत्याचार, बलात्कार आज भी हो रहा है।" [2]

सुशीला जी ने अपने नाटक में दलित समाज की वेदना, विद्रोह तथा नकार को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। ग्रामीण अंचलों में दलित स्त्रियों के साथ दबंग जमींदारों के द्वारा किए गए शोषण, अपमान की विरुद्ध तीखी प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति करते हुए अनदेखी सच्चाई को परत-दर-परत उघारने का प्रयत्न हुआ है। समाज में व्याप्त विषम परिस्थितियों को उजागर करना भी नाटककार का एक उद्देश्य रहा है।

'नंगा सत्य' नाटक में सदियों से परम्परित ढ़ंग से दलित समुदाय पर ब्राह्मणों, सवर्णों तथा जमींदारों द्वारा किए गए शोषण को व्यंग्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटक में कमल बाबा साहब के विचारों से प्रभावित होकर गाँव के जमींदारों द्वारा तथाकथित निम्नजातियों पर अत्याचार करने के विरोध में कहता है कि "उन्हीं की प्रेरणा से हमने अपना उद्देश्य बनाया है – समाज को बदल डालो, समाज-व्यवस्था को बदल डालो, रूढ़ियों को तोड़ दो... बेड़ियों को तोड़ दो...।" [3]

वर्ण-व्यवस्था में समाज के सबसे नीचले पायदान पर रहने के कारण दलितों की स्थिति काफी दयनीय थी। प्राचीन समय से उन पर धार्मिक कर्मकाण्डों को लादकर हिंदू समाज उन्हें विभिन्न प्रकार से प्रताड़ित तथा शोषित कर रहा था। जिसे डॉ. अम्बेडकर ने संघर्ष करते हुए हाशिए के समाज को जागरूक करने का प्रयास किया। किंतु विडम्बना यह है कि दलित समाज की एक से अधिक धाराओं के गठन के कारण डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा विशेष स्थान बनाने में उतनी सफल न हो सकी जितनी उसे होना चाहिए था। सुशीला टाकभौरे मूलतः बाबा साहब के विचारों से इतनी प्रभावित है कि उनकी तमाम रचनाओं में उनकी विचारधारा के पुट मिल जाते हैं। दलितों को शिक्षा की ताकत से बाबा साहब ने रूबरू करवाया था। किंतु शिक्षित होने के बावजूद उनके साथ बाहुबल, धनबल से अमानवीय व्यवहार किया जाता रहा है। इसलिए ठाकुर धनसिंह का बिगड़ा रईसजादा सत्यजीत सिंह गुस्से के साथ कहता है "भंगी-चमारों... तुमने मंच पर आने की हिम्मत कैसे की? जाओ, गाँव के बाहर रहो... हिन्दू महाजनों से दूर, अपनी गंदी बस्तियों में रहो... सवर्णों की सेवा करो... उनकी जूठन पर अपना निर्वाह करते रहो...। यदि किसी ने, कुछ ज्यादा चाहा, तो मार डाले जाओगे... मार डाले जाओगे...।" [4]

वर्तमान समय में दलित समुदाय शिक्षा ग्रहण करते हुए अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रहा है। लेकिन ग्रामीण अँचलों में अभी भी जमींदारी प्रथा के अंतर्गत उन्हें दासों की भाँति रहने के

लिए विवश किया जाना आम बात हो गई है। कमल और कृपाशंकर दोनों बातचीत करते हुए ठाकुर का बेटा सत्यजीत के बारे में कहते हैं कि "जमींदारों की जमींदारी नहीं रही, फिर भी ताकत और रुपयों के बल पर वे क्या नहीं करते? ठाकुर और ऐसी ही दबंग जातियों के लोग गरीब, दलित, पिछड़े वर्ग की बहू-बेटियों के साथ, इसी तरह बलात्कार और अत्याचार कर रहे हैं।" [5]

सामान्यतः सवर्णों द्वारा सदियों से परम्परित रूप से दलित समुदाय पर जितने भी अन्याय तथा शोषण किए जा रहे हैं उन सबमें यदि सबसे अधिक प्रताड़ित, अपमानित हुई है तो वह केवल और केवल दलित स्त्री ही हुई है। उसकी पीड़ा दोहरी-तिहरी है। दलितों को अपमानित तथा नीचा दिखलाने के लिए सवर्ण समाज के पुरुष उनकी स्त्रियों के साथ दुर्व्यहार और उनकी अस्मिता को ताड़-ताड़ करते हैं। विभिन्न प्रकार से निचोड़ी तथा टूटी हुई दलिता के लिए एक पल के लिए उसका परिवार भी साथ खड़े होने से कतराने लगता है। साथ ही साथ शिक्षित होकर उच्च पद पर आश्रित होने पर भी दलितों को उनके पुश्तैनी काम करने के लिए मजबूर किया जाता है "ठाकुर धनसिंह ने नाराज होकर चेतराम के पूरे कुटुम्ब परिवार को खूब मारा-पीटा। उन्हें दहकते हुए गरम लोहे से दागा। उनके घर की औरतों को बेइज्जत करके गाँव में घुमाया, सुनीत को जीप गाड़ी से बाँधकर, गाड़ी के साथ घिसटाया। अंत में घबराकर सुनीत ने अपना पुश्तैनी काम करना मंजूर कर लिया। फिर, सब लोग देख रहे हैं - चार्टर एकाउण्टेण्ट सुनीत कुमार जाटव मंच पर जूता-चप्पल गाँठ रहा है। वह मंच पर मरे ढोर का चमड़ा उतार रहा है, माँस काट रहा है...।" [6] अर्थात् सवर्णों की बात नहीं मानने पर वे किस प्रकार दलितों के साथ व्यवहार कर सकते हैं इसकी सच्चाई का अंदाजा नाटक के इस भाग से लगाया जा सकता है।

दलित चाहे गाँव का रहने वाला हो या शहर का रहने वाला दोनों ही जगह वह शोषित होता है। केवल शोषण विधि अलग-अलग रहती है। शहर की अपेक्षा गाँवों में उसकी स्थिति अधिक दयनीय होती है। उसे अपने अधिकारों के बारे में मालूम होते हुए भी वह उसका सही जगह उपयोग में नहीं ला पाता। जिसके बरक्स उसका जीवन और भी संघर्षपूर्ण हो जाता है। शहर में वह मजदूर की भूमिका में रहता है। जहाँ उसे दोहरे रूप में शोषित होना पड़ता है। गुलामों जैसी जिदंगी जीने के लिए बाध्य होता दलित अपने अधिकार तथा स्व की रक्षा करने में विफल रहता है "पूरा देश उन्नति कर रहा है। सभी जातियाँ उन्नति कर रही हैं। सभी कौम प्रगति के पथ पर आगे बढ़ रही हैं... मगर मैं कहाँ हूँ? मुझे कुछ पता नहीं है...।"[7]

दरअसल पीड़ा की पराकाष्ठा सहते-सहते दलित समाज ने बहुत ही कष्टप्रद जीवन जिया है। समय के अंतराल के साथ-साथ इन हाशिए के समाज ने उठ खड़ा होना आरम्भ कर दिया है। बाबा साहब के विचारों से प्रभावित होते हुए उनके द्वारा दिए गए एकजुट, शिक्षित, संगठित होने के मूल मंत्र से स्वयं का विकास पथ खोजने लगा है। अब वह किसी भी तरह रूकने, झुकने वाला नहीं। इसलिए तो वह आत्ममंथन करते हुए नाटक का पात्र सुनीत के माध्यम से कहलवाती है "हम दलित, अब समझने लगे हैं – अपने ऊपर होने वाले अन्याय-अत्याचार को, जातिभेद और अपमान को। अब हम चुप नहीं रह सकते। हमारी आने वाली पीढ़ियों को, हम यह सब नहीं सहने देंगे। हम चीख-चीख कर बतायेंगे, अपना दुख, अपना अपमान। अब कोई हमारा अपमान नहीं कर सकता... हम भी सम्मानित इंसान हैं...।"[8]

अतः दलितों में उत्पन्न इस आत्मज्ञान को और भी स्पष्ट रूप से समझने के लिए समकालीन प्रखर स्त्रीवादी आलोचक प्रो. रूपा गुप्ता के इन विचारों से समझा जा सकता है "साहित्य उन आलोड़नों का 'आँखों देखा गवाह' है जो उस तत्कालीन समाज में घटित हो रहे हैं या घटित होने की कतार में हैं। इसमें जिया जा रहा बोझिल शोषित वर्तमान, स्वर्णिम गौरवशाली अतीत और स्वप्निल काम्य भविष्य – तीनों सम्मिलित हैं। इसमें वर्तमान की वास्तविकता और अवास्तविक आदर्शों के वास्तवीकरण की अद्भुत आकांक्षा है। इस काल में राजनीति, धर्म, समाज-संस्कृति और इतिहास में 'पददलित' (तथाकथित भी कहा जा सकता है) जाति के उद्वेलन का स्वर है और यह देश के हर हिस्से से उठ रहा है। यह जागरण का स्वर है – आत्मालोचना, आत्म-धिक्कार के साथ ही आत्मस्वीकार का स्वर है।"[9]

समाज में आधी आबादी के नाम से उपस्थित स्त्री वर्ग की अपनी पहचान तथा अस्मिता है। किंतु इसमें भी एक अलग पहचान दलित स्त्री रखती है। मूलतः दलित स्त्री को जीवन के कई भागों में संघर्ष करना पड़ता है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने पर भी उसकी स्थिति इतनी दयनीय और पीड़ादायक है जिसकी कल्पना साधारणतः नहीं की जा सकती। नाटक में जगह-जगह पर स्त्री अस्मिता पर प्रकाश डाला गया है। रूढ़िवादी मान्यताओं की बेड़ियों को तोड़ते हुए अपने भीतर आई नई चेतना, जागरण से जो आत्मविश्वास उनमें जागा है उससे अब अपनी आत्मसम्मान की रक्षा के लिए एकजुट होकर आवाज़ उठाएँगी। नाटक की पात्रा नीलिमा के माध्यम से सुशीला जी मानो अपने विचारों को ही खोल रही हों। जब सुनीत स्त्रियों को भी किसी भी बदलाव के लिए खड़े होने की बात करता है "महिलाएँ भी समाज परिवर्तन के आन्दोलन से जुड़ेंगी, तभी इस आंदोलन को पूर्णता मिलेगी। शोषित पीड़ित स्त्रियाँ जागृत होकर, स्वयं अपने अधिकार प्राप्त करेंगी।" [10] अर्थात् स्त्रियाँ यदि ठान ले की उन्हें कुछ कर गुजरना है तो उन्हें रोक पाना काफी कठीन होगा। शक्ति के रूप में प्रसिद्ध नारी घर-घर में

अपनी ऊर्जा का संचार करती है। अपनी अथक परिश्रम द्वारा परिवार को एकजुटता में बाँधकर रखने का कार्य भी स्त्री भरपूर तरीके से निभाती है। किंतु यही पुरुष वर्ग उसे क्षमता, अस्मिता, अधिकारों का हनन करने में एक पल की भी देरी नहीं लगाता। मूलत: इसी समस्या को व्यक्त करते हुए नीलिमा काफी कठोरता के साथ समाज से प्रश्न पूछती है कि "हम भारत देश की नारी हैं... हम फूल नहीं चिनगारी हैं (मंच पर बैठे लोग तालियाँ बजाते हैं। नीलिमा हाथ उठाकर उन्हें रोकते हुए आवेश के साथ) मत बजाओ तालियाँ। आपकी ये तालियाँ मेरे गालों पर थप्पड़ हैं। जिसकी इज्जत सरेआम लुटी हो, उसके लिए कोई ताली नहीं बजाई जाती। मैं पूछती हूँ, हमारे साथ यह अन्याय क्यों? क्या इसलिए कि नारी कमजोर है, अबला है ! हमें कमजोर, अबला किसने बनाया है? क्यों बनाया है? हमारे साथ अन्याय, अत्याचार, बलात्कार कब तक होता रहेगा? कब तक? कब तक...?" [11] अर्थात् आधुनिक नारी अब जागने लगी है, प्रश्न पूछने लगी है। वह पितृसत्तात्मक समाज की आँखों में आँखें डालकर अपने अधिकारों, स्वाभिमान की बात करने लगी है। यह जागरण, चेतना उसमें बाबा साहब के विचारों से ही आया है। जो अभी तक घर की चारदीवारी में कैद रहती थी अब उसे भी खुला आसमान मिल रहा है। किंतु इस स्वतंत्रता प्राप्ति की कीमत भी उसे चुकानी पड़ी है।

दलितों में उत्पन्न जागृति से उनमें विकास, न्याय की चेतना आ गई है। अब वे अपने अधिकारों तथा कानून-व्यवस्था की बातें करते हैं। शिक्षा का ज्ञान पाकर उनमें सामाजिक बोध आने लगा है। तभी तो वे अब कल-कारखानों में उचित मेहनताना नहीं मिलने के कारण हड़ताल तक कर देते हैं। वहीं दूसरी ओर जमींदारों के खेतों में किसानी करने से भी मना कर देते हैं। दलितों में आए इस बदलाव को नाटक में उच्च वर्ण वाले भली भाँति समझने लगे हैं। तभी तो जो ठाकुर पहले दलितों को आँखें दिखाकर, डरा-धमकाकर उनका शोषण करने में एक पल की भी देरी नहीं करते थे आज वही अपने बेटे सत्यजीत को समझाते हुए कहता है कि "अब यह समय गुस्सा दिखाने का नहीं है। पहले पुलिस हमारे साथ थी, कानून हम खुद बनाते थे। अपने कानून हम खुद चलाते थे, हम खुद दूसरों को सजा देते थे। अब कानून हमारे हाथों में नहीं है बेटा। डॉ. अम्बेडकर ने देश का संविधान बनाकर, इन शूद्र-अछूतों को बहुत ताकत दे दी है, अब हमारे हाथ कमजोर हो गए हैं।" [12] अर्थात् अब सवर्ण भी संविधान की बात मानने लगे हैं। जिसमें चातुर्वर्ण्य कहे जाने वाले हाशिए के समाज के लिए भी समाज में समानता तथा स्वाभिमानपूर्वक जीवन जीने का अधिकार अंकित है।

समाज में दलितों को कई मोर्चों पर रोकने का प्रयास सवर्णों ने किया है। जिसमें उन्हें ब्राह्मणों का साथ भी भरसक मिला है। धर्म के आधार पर तो कभी बल के आधार पर उनका शोषण होता रहा है। इसमें दलित स्त्रियों के लिए एक अलग ही परिपाटी निर्मित कर दी गई थी। जिसमें दिन के उजाले में वह अस्पृश्य और रात के अंधेरे में वह स्पृश्य बन गई थी। जाति तथा वर्ग के आधार पर लगातार शोषित होती स्त्री का जीवन नरक के समान हो गया था। विवशता के कारण जब वही दलित स्त्री ठेकेदारों, जमींदारों द्वारा अपमानित होकर अपने परिवार में वापस आने की चेष्टा करती है तो वहाँ भी उसे उपेक्षा तथा उत्पीड़न ही सहना पड़ता है। अपने इसी संघर्षपूर्ण जीवन से बाहर निकलकर जब ये स्त्रियाँ अपनी बच्चियों को शिक्षित करने के कड़े कदम उठाती है तो उनके बच्चों के साथ-साथ उनका जीवन भी सुधरने, बदलने लगता है। पढ़-लिखकर जब ये दलित लड़कियाँ अपने पाँव पर खड़ी होकर अपनी जिम्मेदारियाँ समझने लगती हैं तो सवर्णों द्वारा उन्हें धोखा देना या ठगना मुश्किल होने लगता है। नीलिमा समाज के प्रतिष्ठित लोगों को दलितों के साथ होने की बात करते हुई कहती है कि "न केवल डॉक्टर और वकील, बल्कि हमारे इंजीनियर प्रोफेसर सभी हमारे साथ हैं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में, उन्होंने अपने-अपने विभाग में, अपना संगठन बनाया है। वे सभी अपनी संस्थाओं के माध्यम से जन-जागृति कर रहे हैं। वे जन-सामान्य लोगों को प्रगति-परिवर्तन के आन्दोलन से जोड़ रहे हैं।" [13]

अत: समग्र रूप से देखने पर ज्ञात होगा कि नाटक की विषयवस्तु जिस घटना परिघटना को उद्घाटित करना चाहती है उसमें वह पूर्ण रूप से सफल हुई है। इसके संबंध में आलोचक फारूक शाह ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि "दलित साहित्य मूलभूत रूप से, एक सामाजिक आन्दोलन होने के कारण, नाटक का समूह माध्यम के रूप में इस्तेमाल, दलित शोषित समुदायों में लोकतांत्रिक जागृति लाने के लिए और समग्र समाज के सामने प्रतिवाद तथा प्रतितर्क प्रस्तुत करने के लिए किया गया है। इस तरह एक जागतीक चेतना आविष्कृत कर सदियों से भारतीय समाज-व्यवस्था में दीमक की तरह पैठे हुए, अस्तित्व विरोधी मूल्यों तथा जीवन विरोधी रवैये के प्रति सावधान करने का प्रयत्न व्यापक रूप से रहा है।"[14]

**अध्ययन का उद्देश्य**

दलित लेखिकाओं ने अपने साहित्य के माध्यम से अपनी पीड़ा का यथार्थ चित्रण किया है| साहित्य की विभिन्न विधाओं के अंतर्गत नाटक विधा के द्वारा दलित नाटककार सुशीला जी ने समाज में व्याप्त दलितों के ऊपर सवर्णों द्वारा धनबल, राजनीतिक वर्चस्व का लाभ उठाते हुए हाशिए के समाज कहे जाने वाले दलित समुदाय का विभिन्न प्रकार से शोषण किया है| इसी दोहरी नीति का सच प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है|

**निष्कर्ष**

रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी दलित नाटकों की विचारधारा एवं चेतना की निर्मिति मूलतः तथाकथित निम्नजाति के द्वारा समाज में भोगे गए अप्रतिम पीड़ा, वेदना, अपमान आदि द्वारा हुआ है। सहानुभूति बनाम स्वानुभूति के बरक्स स्वानुभूति ही वह मौलिक आधार रहा है जिससे प्रभावित तथा परिवर्द्धित होकर दलित समुदाय ने अपनी शोषण-गाथा को नाटकों का रूप देते हुए यथार्थता के साथ व्यक्त किया है। दलित लेखिकाओं ने दलित स्त्रियों के द्वारा भोगे गए नरक के समान जिए जीवन को सूक्ष्मता के साथ चित्रित करने में सफल हुई हैं।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. *थोरात, विमल, मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिंदी कविता में सामाजिक, राजनीतिक चेतना, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 1999, पृ. 29*
2. *टाकभौरे, सुशीला, नंगा सत्य, शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2015, पृ. 9-10*
3. *वही, पृ. 25*
4. *वही, पृ. 31*
5. *वही. पृ. 42*
6. *वही, पृ. 43*
7. *वही, पृ. 49*
8. *वही, पृ. 49*
9. *गुप्ता, रूपा, औपनिवेशिक शासन उन्नीसवीं शताब्दी और स्त्री प्रश्न, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 149*
10. *टाकभौरे, सुशीला, नंगा सत्य, शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2015, पृ. 50*
11. *वही, पृ. 50*
12. *वही, पृ. 67*
13. *वही, पृ. 69*
14. *वही, पृ. 72*